



International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2017; 3(1): 01-03

© 2017 IJSR

www.anantaajournal.com

Received: 01-11-2016

Accepted: 02-12-2016

डॉ. रेनु यादव

संस्कृत विभाग, एम.जी.पी.जी.
कॉलेज, फिरोजाबाद, उत्तर प्रदेश,
भारत

ऋग्वेद में कर्मवाद की अवधारणा

डॉ. रेनु यादव

मानव जीवन में कर्म का महत्वपूर्ण स्थान है। यह जीवन का अपरिहार्य अंग है। वस्तुतः कोई भी व्यक्ति क्षणमात्र भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता²। भारतीय परम्परा कर्मों से पलायन की आज्ञा नहीं देती। यहाँ कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ माना गया है, क्योंकि कर्म के बिना तो शरीर निर्वाह संभव नहीं है³। यजुर्वेद में कर्म करते हुए मनुष्य को सौ वर्ष तक जीने की प्रेरणा दी गयी है⁴। ऋग्वेद में स्पष्ट उक्ति है कि अपने महान् कर्मों से ही इन्द्र विख्यात हुआ⁵। वैदिक ऋषियों की दृष्टि में कर्म करना मनुष्य के लिए अनिवार्य है। ऋग्वेद में कर्म न करने वालों को हीन एवं पतित माना गया है। एक मन्त्र में अकर्मा व्यक्ति को दस्यु, अज्ञानी, व्रतहीन तथा अमानुष कहा गया है⁶। इसी तरह कर्मफल के सन्दर्भ में भी भारतीय चिन्तकों की धारणा स्पष्ट है कि मनुष्य जैसी उत्तम या अधम भावना से कर्म करता है, वैसा ही शरीर पाकर उन कर्मों के फलों का भोग करता है⁷। उपनिषदों में भी शुभ एवं अशुभ कर्मों के फलस्वरूप शुभ एवं अशुभ परिणामों का विशद विवेचन दृष्टिगोचर होता है⁸। भारतीय दर्शनों में यह विश्वास कर्मवाद के नाम से प्रसिद्ध है। यह नैतिक सिद्धान्त सृष्टि का अटल एवं अनिवार्य सत्य है, जो शुभ कर्मों का शुभ तथा अशुभ कर्मों का अशुभ फल प्रदान करता है।

ऋग्वेद समस्त विद्याओं एवं ज्ञान विज्ञान का मूल स्रोत है। ऋचाओं में कर्म शब्द लगभग 50 बार विभिन्न विभक्तियों में प्रयुक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त यह क्रतु, अकर्म, सुकर्म आदि रूपों में भी समस्त होकर परिलक्षित होता है। कर्म के सन्दर्भ में कर्तव्य कर्मों, सुकर्मों, पाप-कर्मों आदि के फलस्वरूप प्राप्त परिणामों का विवरण ऋग्वैदिक ऋचाओं में प्राप्त होता है⁹। जिनके आधार पर ऋग्वेद में कर्मवाद की अवधारणा को देखा जा सकता है। कतिपय दार्शनिक ऋग्वेद में ऋत के रूप में कर्मवाद की अवधारणा स्वीकार करते हैं।¹⁰ डॉ० राधाकृष्णन् ऋत को कर्म सिद्धान्त का पूर्ववत मानते हैं।¹¹ महर्षि दयानन्द सरस्वती ने ऋत को कार्यजगत् का अनादि कारण, सत्य स्वरूप ब्रह्म का नियम, कारण रूपी सत्य, प्रवाह रूप सत्य आदि माना है।¹² जयदेव वेदालंकार ऋत को त्रिकालाबाधित नियम, सार्वभौम, सार्वकालिक सदाचार के मानदण्ड के साथ ही अपरिवर्तनशील सत्य के रूप में वस्तुओं की यथार्थता में स्वीकार करते हैं।¹³

यद्यपि ऋग्वेद में प्रत्यक्ष रूप से कहीं भी ऋत के द्वारा कर्मवाद का निर्देश नहीं किया गया है। लेकिन सायण ने अपने भाष्य में ऋत पद द्वारा कर्मफल का निर्देश अवश्य किया है।¹⁴ वस्तुतः ऋग्वेद में ऋत मूल दार्शनिक स्वरूप की दृष्टि से व्यवस्था के रूप में चित्रित है। ऋचाओं में ऋत के अन्य रूप इसी अवस्था के परिणामस्वरूप ही परिलक्षित होते हैं। यह प्रकृति में प्राप्त निश्चित व्यवस्था के कारण शाश्वत नियम, यज्ञों में प्राप्त नियमितता के कारण यज्ञ, यज्ञों में दृष्टिगत सत्याचरण व्यवस्था के कारण नैतिक व्यवहार का नियम, गतिशीलता के कारण उदक, असत्यवादी अनृत का निश्चित विपरीत भाव होने के कारण सत्य आदि रूपों में स्वीकृत हुआ चूँकि प्राणियों में कर्मफलों का नियंत्रण भी एक व्यवस्था के अनुसार ही परिलक्षित होता है, अतएव सायण आदि भाष्यकारों ने ऋत को कर्मफल का वाचक माना। ऋचाओं में ऋत कर्म के वाचक के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है। उदाहरणार्थ जब अग्नि के लिए कहा जाता है कि हे अग्ने ! ऋत का आचरण करता हुआ तू किस ऋत के द्वारा हमारे नवीन स्रोत को जानने वाला है। तो यहाँ ऋतेन पद द्वारा कर्म का ही बोध होता है।¹⁵ एक अन्य मन्त्र में वेंकटमाधव ने ऋत का भाष्य करते हुए ऋत का अर्थ कर्म ही माना है।¹⁶ ऋचाओं में यह नैतिक व्यवस्था के रूप में भी वर्णित है, जिसकी ऋत के अनुसार चलना ही व्रत है।¹⁷ आदि रूपों में अनुशांसा की गयी है। इस तरह मानव जगत् में ऋत नैतिक मूल्यों एवं आदर्शों का अधिष्ठाता है। जिसके द्वारा ऋषियों ने एक निश्चित व्यवस्था की परिकल्पना की। इसी व्यवस्था में कर्मवाद के उत्स को देखा जा सकता है।

ऋग्वेद में त्रैत (ब्रह्म, जीव एवं प्रकृति) की परिकल्पना में भी कर्मवाद की अवधारणा को देखा जा सकता है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में कहा गया है कि दो सुन्दर पंख वाले पक्षी जो कि परस्पर संयुक्त

Correspondence

डॉ. रेनु यादव

संस्कृत विभाग, एम.जी.पी.जी.
कॉलेज, फिरोजाबाद, उत्तर प्रदेश,
भारत

एवं सखा हैं, सामान्य रूप से एक ही वृक्ष का आश्रय लिये हुए हैं। उन दोनों में एक स्वादुफल (पिप्पलम्) को खाता है और दूसरा बिना खाये ही केवल साक्षी रूप में देखता है।¹⁸ यहाँ सायण ने 'सयुजौ' का अर्थ 'समानयोगी' करके जीवात्मा एवं परमात्मा माना है, जिसमें जीवात्मा कर्मफलों को भोगता है और परमात्मा साक्षी मात्र रहता है।¹⁹ डॉ० कुन्हन राजा वृक्ष को ब्रह्माण्ड का वाचक मानते हैं।²⁰ जबकि महर्षि दयानन्द सरस्वती प्रकृति।²¹ महर्षि ने प्रकृति, जीवात्मा तथा परमात्मा को क्रमशः भोग्य, भोक्ता तथा नियन्ता के रूप में स्वीकार किया है।²² इस संसार में जीव जैसा कर्म करता है, वैसा ही ईश्वरीय न्याय से अवश्य भोगता है। कर्म तथा जीव का नित्य सम्बन्ध है।

ऋग्वेद में उत्तम, मध्यम एवं अधम इन तीनों लोकों का उल्लेख है।²³ एक अन्य मन्त्र में कहा गया है कि तीन दिव्य लोक हैं, उनमें से दो लोक सविता देव के पास हैं और तीसरा लोका यम के भुवन में वीरों के लिये रहने का स्थान है।²⁴ वैकटमाधव ने यहाँ द्यावः ने यहाँ स्वर्ग किया है।²⁵ एच०जी० नरहरि के अनुसार तीनों स्वर्गों में निम्नतम यम का था, जो सोम तथा चन्द्र से गहन रूप में सम्बन्धित था और जहाँ यज्ञ करने वाले तथा दानियों की भाँति साधारण योग्यता के लोग रहते थे। शेष दो इससे उत्कृष्ट थे, जिनमें सविता एवं सूर्य का प्रदेश अपेक्षाकृत निम्न था और इसमें ऋभु तथा मरुत् जैसे वे लोग रहते थे, जिन्हें उनके असाधारण गुणों के कारण अमरत्व एवं देवत्व प्राप्त हो गया था। इससे इतर एक वह लोक था, जिसे विष्णु के सर्वोच्च स्वर्ग से भिन्न नहीं कहा जा सकता और यह केवल मन्त्रदृष्टा ऋषियों एवं विशेष रूप से केवल उन्हीं लोगों के लिये प्राप्य था, जो अपनी दया एवं भक्ति के लिये प्रसिद्ध थे।²⁶ इस तरह ऋग्वेद में पुण्यात्माओं के लिये उत्कृष्ट लोकों का विवरण प्राप्त होता है। पापियों के लिये भी अन्धतमस्, अधरतमस् तथा गभीरम् पदम् आदि निकृष्ट स्थानों की परिकल्पना ऋग्वेद में परिलक्षित होती है। एक मन्त्र में कहा गया है कि हमारे शत्रु अन्धतमस् से युक्त हो जायें।²⁷ अन्यत्र इन्द्र से प्रार्थना है कि जो हमें नष्ट करना चाहता है, उसको अधरतमस् में डाल दें।²⁸ एक अन्य मन्त्र में वर्णित है कि इस गम्भीर स्थान को पापी, ऋतविरोधी तथा असत्यवादी व्यक्तियों ने बनाया है— 'पापासः सन्तो अनूता असत्या इदं पदमजनाता गभीरम्'।²⁹ यहाँ गभीरम् पदम् का अर्थ सायण ने नरकस्थानम् किया है।³⁰ इन संदर्भों के आधार पर यह निष्कर्ष दिया जा सकता है कि यद्यपि ऋग्वेद में नरकलोक का यह विकसित रूप दिखाई नहीं देता जो बाद के ग्रन्थों में प्राप्त होता है, किन्तु वैदिक ऋषियों के मस्तिष्क में एक ऐसे स्थान की धारणा जन्म ले चुकी थी, जहाँ पापियों को दण्ड भोगने के लिये जाना होता है। इस स्थान को हम नरकलोक कह सकते हैं। इस तरह पुण्यात्माओं के लिये उत्कृष्ट एवं अधमात्माओं के लिये निकृष्ट लोगों की परिकल्पना कर्मवाद की अवधारणा को पुष्ट करती है। ऋग्वेद में सुकृत एवं दुष्कृत की अवधारणा भी कर्मवाद को ही प्रमाणित करती है। ऋचाओं में सुकर्म एवं दुष्कर्म दोनों के ही परिणामों का पृथक्-पृथक् निर्देश परिलक्षित होता है। अच्छे कर्म का अच्छा फल और बुरे कर्म का बुरा फल प्राप्त होता है। उत्तम कर्म करने से मनुष्य को भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों समृद्धियाँ प्राप्त होती हैं। देवता लोग उसे अन्नादि से परिपूर्ण कर समस्त सुखों को प्रदान करते हैं। एक मन्त्र में सुकृतम व्यक्तियों को मधु का भोग प्राप्त करने वाला कहा गया है।³¹ यहाँ मधु को स्वर्गिक आनन्द का प्रतीक माना जा सकता है। अन्यत्र सुकृतों के लिये अन्नादि समृद्धि एवं सुख का विधान है।³² जबकि दुष्कृतों को इन सुखों से वंचित बताया गया है।³³ एक मन्त्र में इन्द्राणी का कथन है कि मैं दुष्कृत के लिए सुखदात्री नहीं होती।³⁴ अन्यत्र कहा गया है कि दुष्कृत व्यक्ति ऋत के पथ को पार नहीं कर सकते।³⁵ इस तरह ऋग्वेदिक ऋचाओं में वर्णित सुकृत एवं दुष्कृत के फलों का विवेचन कर्मवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। ऋग्वेद में पाप व पुण्य की अवधारणा पूर्णतः स्पष्ट है।³⁶ यह अवधारणा भी कर्मवाद को पुष्ट करती है। ऋचाओं में आगस्,

एनस्, अनूत, दुरित, अंहति और दुष्कृत पाप के अर्थ में प्रयुक्त हैं। वहाँ शास्त्र विहित कर्मों को न करने या शास्त्र विहित कर्मों के विरुद्ध आचरण करने के कारण व्यक्ति को पापी कहा गया है।³⁷ ऋषियों की दृष्टि में व्यक्ति अपने ही कर्मों के परिणाम स्वरूप पाप का अधिकारी होता है।³⁸ पाप केवल जानकारी में ही नहीं होते, अपितु अनजाने में भी हो सकते हैं, जिनसे बचने के लिए ऋचाओं में देवताओं से प्रार्थना की गयी है।³⁹ इसी तरह ऋग्वेद में सुकृत, शिव, भद्र आदि के साथ पुण्य की अवधारणा का विकास दृष्टिगोचर होता है। डॉ. वेद प्रकाश शर्मा के अनुसार— 'आधुनिक युग के धर्मपरायण व्यक्तियों की भाँति ऋग्वेदिक लोग भी यह मानते थे कि मनुष्य को वर्तमान जीवन में सांसारिक सुख तथा अगले जन्म में स्वर्ग सुख प्राप्त करने के लिए पाप से दूर रहना चाहिए और सदैव पुण्य करना चाहिए'।⁴⁰

पुनर्जन्म की अवधारणा भी कर्मवाद को इंगित करती है। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से पुनर्जन्म का विवरण ऋचाओं में प्राप्त नहीं होता, तथापि ऐसे संकेत अवश्य प्राप्त होते हैं, जिन्हें पुनर्जन्म सिद्धान्त का आधार माना जा सकता है। सातवें मण्डल के तैत्तिरीय सूक्त में वसिष्ठ ने अपने अनेक जन्मों का उल्लेख किया है। एक सम्पूर्ण सूक्त में मृत व्यक्ति के आत्मा के पुनः लौट आने का विवरण प्राप्त होता है।⁴¹ ऋचाओं में प्राण, इन्द्रिय एवं शरीर को पुनः प्राप्त करने के लिए प्रार्थनाएँ भी की गयी हैं।⁴² जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि वैदिक ऋषि इस तथ्य से परिचित थे कि मृत्यु के अनन्तर मानव शरीर, इन्द्रिय तथा प्राण उन्हें पुनः प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार ऋग्वेद में पुनर्जन्म सिद्धान्त की विद्यमानता बीज रूप में परिलक्षित होती है, जिसने उपनिषदों एवं भारतीय दर्शन में विकसित पुनर्जन्म के सिद्धान्त का मार्ग प्रशस्त किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती वेद में स्पष्ट रूप से पुनर्जन्म का सिद्धान्त स्वीकार करते हैं।⁴³ वैदिक ऋचाओं में कर्म पुनर्जन्म का सम्बन्ध कार्य कारण श्रंखला के अनुसार प्रतीत होता है। जीवन में किये गये कर्मों, प्राप्त अनुभवों तथा शिक्षा का प्रभाव, संस्कार रूप से मन में संगृहित रहता है, जो पुनर्जन्म का प्रेरक है।⁴⁴ सकाम एवं निष्काम कर्म की भावना में भी कर्मवाद को देखा जा सकता है। ऋग्वेद में ईशस्तुति, यज्ञ एवं दान आदि कर्म सुख-समृद्धि की कामना के साथ सम्पादित होने का विधान, उन्हें सकाम कर्म की संज्ञा प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त ऋचाओं में ईश्वरार्पण बुद्धि से भी कर्म करने का निर्देश प्राप्त होता है।⁴⁵ ऐसे कर्मों को निष्काम कर्म की श्रेणी में रखा जा सकता है।

धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन पुरुषार्थ की सिद्धि ही मानव जीवन का उद्देश्य है।⁴⁶ जिनकी प्राप्ति के लिए सकाम एवं निष्काम दोनों प्रकार के कर्म सहायक हैं। वस्तुतः, धर्मयुक्त निष्काम कर्मों के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है। अत एव इहलौकिक एवं पारलौकिक दोनों उपलब्धियों के लिए धर्मानुकूल कर्म करना ही अभीष्ट है।

ऋग्वेदिक ऋचाओं में कर्म के लिए क्रतु शब्द का प्रयोग भी मिलता है। आचार्य यास्क ने भी क्रतु को कर्म का पर्याय माना है— क्रतु कर्मनाम।⁴⁷ यहाँ विचारणीय है कि ऋग्वेदिक ऋषियों का अभिप्राय यहाँ किस तरह के कर्मों से है? इस सन्दर्भ में निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि सत्कर्मों से ऋचाओं में प्रायः सुकृतः एवं सक्रतु विशेषण परिलक्षित होते हैं। वस्तुतः सत्कर्मों से ही शुभ फल की आकांक्षा की जा सकती है। अत एव सत्कर्म ही वरणीय है। ऋचाओं में सत्कर्मों की महिमा का विशद विवेचन है। उदाहरणार्थ एक मन्त्र में उषाओं को सुकृत एवं सुदानी व्यक्ति के लिए अन्न धारण करती हुई बताया गया है।⁴⁸ अन्यत्र पुण्यात्माओं के सत्कर्मों को सबका कल्याणकारी कहा गया है।⁴⁹

सत्कर्मों का फल इसी लोक में मिलता है अथवा परलोक में भी? इस सन्दर्भ में वैदिक ऋषियों की धारणा है कि सत्कर्मों का फल इहलोक एवं परलोक दोनों में प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ अग्नि को सम्बोधित एक मन्त्र में कहा गया है कि हे अग्ने! तुम इस मनुष्य को प्रतिदिन यशस्वी बनाते हुए उत्तम अमरपद पर प्रतिष्ठित करते हो और जो दोनों प्रकार के जन्म के लिए अतीव पिपासु है, उस

ज्ञानी के लिए सुख और अन्न सब ओर से देते हो।⁵⁰ इस मन्त्र के सन्दर्भ में स्कन्दस्वामी का कथन है कि अग्नि अपनी आराधना करने वाले व्यक्ति को परलोक में अमृतत्व एवं इस लोक में अन्नादि समृद्धि तथा यश प्राप्त कराता है।⁵¹ इसी तरह एक स्थल पर सोम के लिए कहा गया है कि वह हवि दान करने वाले यजमान के लिए दुधारू गौ, शीघ्रगामी घोड़ा तथा वीर, कर्मठ, गृहकार्य में कुशल, यज्ञपरायण सभ्य एवं पिता को ख्याति देने वाला पुत्र प्रदान करता है⁵² तो वहीं अन्त्येष्टि सूक्त में मृतक को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि— तुम सर्वोच्च स्वर्ग में पितरों के साथ, यम के साथ तथा अपने इष्टापूर्त के साथ संगत हो जाओ।⁵³ इस तरह सत्कर्मों द्वारा इहलोक एवं परलोक दोनों स्थानों में फल की प्राप्ति होती है।

कृत कर्म नष्ट होते हैं अथवा नहीं? इस सन्दर्भ में ऋषियों का मन्तव्य है कि कृत कर्म कभी नष्ट नहीं होते, उनका अस्तित्व बना रहता है। चाहे वे कर्म वर्तमान में किये गए हों अथवा भूतकाल में। अश्विनी कुमारों को सम्बोधित एक ऋचा में कहा गया है कि पूर्व में किये गये कर्म कभी नष्ट नहीं होते।⁵⁴ एक अन्य मन्त्र में इन्द्र की उक्ति है कि मुझे सब लोग किये गये कर्मों से ही प्राप्त होते हैं।⁵⁵ अन्यत्र वरुण के लिये कहा गया है कि जो कार्य किये जा चुके हैं तथा जो भविष्य में किये जायेंगे, उन समस्त आश्चर्यजनक कार्यों को वरुण देखता है।⁵⁶ इन सन्दर्भों से यह प्रमाणित होता है कि व्यक्ति द्वारा कृत कर्म नष्ट नहीं होते और उनके अनुसार उन्हें फल की प्राप्ति होती है। उक्त अवधारणा भारतीय दर्शनों में वर्णित संचित तथा प्रारब्ध कर्मों को इंगित करती है।

इस तरह ऋग्वैदिक सन्दर्भों के अनुशीलन से स्पष्ट है कि ऋग्वेद के ऋषि कर्म विषयक मान्यता से पूर्व परिचित थे, जिसमें कर्मों के धर्म और अधर्म सुरक्षित रहते हैं और कभी भी कृतप्रणाल और अकृताभ्युपगम नहीं होता अर्थात् किये हुए कर्म का फल नष्ट नहीं होता और बिना किये गये कर्म का फल नहीं मिलता। अतः हम कह सकते हैं कि हमारे कर्मों के फल का कभी नाश नहीं होता, साथ ही हमारे जीवन की घटनायें हमारे अतीत के कर्मों के अनुसार भी प्रभावित होती हैं। अत एव ऋग्वेद में इस कर्मवाद रूपी अलंघ्य नैतिक व्यवस्था को स्वीकार किया जा सकता है, जिसका विकास परवर्ती कालों में पूर्ण विकसित रूप में परिलक्षित होता है। दार्शनिक पृष्ठभूमि में उतर कर उक्त शाश्वत एवं विलक्षण विधान को न्यायवैशेषिक में अदृष्ट तथा मीमांसा में अपूर्व की संज्ञा से अभिहित किया गया।

संदर्भ ग्रंथ

1. रेनु यादव संस्कृत विभाग, एम.जी.पी.जी. कॉलेज, फिरोजाबाद।
2. न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। गीता 3.5
3. नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः। शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्धाचेदकर्मणः।। गीता 3.8
4. कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे। यजु. 40.2
5. कर्मभिर्महद्धि सुश्रुतोऽभूत्। ऋ० 3.36.1
6. अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यत्रतो अमानुषः। ऋ. 10.22.8
7. यादृशेन तु भावेन यद्यत्कर्म निषेवते। तादृशेन शरीरेण तत्तफलमुपाश्नुते। मनु 12/8
8. ईशावास्योपनिषद् - 3, कठोपनिषद् 1.3.7 आदि।
9. ऋग्वेद सूची खण्ड भाग 5, वैदिक पदानुक्रम कोश, संहिता भाग
10. प्रो० संगम लाल पाण्डेय, भारतीय दर्शन का सर्वेक्षण, भूमिका पृ० 11
11. भारतीय दर्शन, पृ० 88
12. (क) डॉ० सुरेन्द्र कुमार, ऋग्वेद में विविध विद्यायें, पृ० 135
(ख) ऋत च सत्यश्चाभीद्वात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्रजायत ततः समुद्रोऽर्णवः।। ऋ० 10190/1 दयानन्द भाष्य
13. जयदेव वेदालंकार, वैदिक दर्शन पृ० 379

14. ऋतस्य सत्यस्यावश्यम्भाविनः कर्मफलस्य.....। ऋ० 1.1.8 पर सायण भाष्य
15. कया नो अग्न ऋतयञ्जृतेन भुवो न वेदा उचथस्य नव्यः। ऋ. 5. 12.3
16. ऋतम् इतिशास्त्र शास्त्रीयम् अकुटिलं कर्मोच्यते इति। ऋ. 5. 12.2 पर वेंकटमाधवकृत भाष्य।
17. ऋतं शंसन्त ऋतमित् त आहुः। ऋ. 3.4.7
18. द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्न्यो अभि चाकशीति। ऋ. 1.164.20
19. ऋ. 1.1164.20 पर सायण भाष्य
20. डॉ० कुन्हन राजा, अस्यवामस्य हिम्न, ट्रान्सलेशन एण्ड नोट्स, पृ० 37
21. सत्यार्थ—प्रकाश, अष्टम उल्लास, पृ० 196
22. श्रीनिवासशास्त्र शास्त्री, दयानन्द दर्शनः एक अध्ययन, पृ० 111
23. यदुत्तमे मरुतो मध्यमे वा यद् वावमे सुभगासो दिवि ष्ट। ऋ. 5. 60.6
24. तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थां एका यमस्य भुवने विराषाट्। ऋ. 1.35.6
25. वहीं पर वेंकटमाधव का भाष्य।
26. एच.जी. नरहरिः आत्मन् अध्याय 4, पृ० 87
27. अन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम्। ऋ. 10.103.12
28. यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः। ऋ. 10.152.4
29. ऋ. 4.5.5
30. वही, सायण भाष्य
31. सुकृतमाः मधुनो भक्षमाशत। ऋ. 9.83.4
32. ऋ. 1.91.20, 92.3, 7.35.4
33. ऋ. 7.104.7
34. न सुर्ग दुष्कृते भुवम्.....। ऋ. 10.86.5
35. ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः। ऋ. 9.73.6
36. ऋतावरी, अंक 5, अप्रैल 2004, पृ० 19-20
37. पी०वी० काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, चतुर्थ खण्ड, पृ० 105
38. ऋ. 6.51.7
39. ऋ. 10.100.7
40. डॉ० वेद प्रकाश शर्मा, नीतिशास्त्र के मूल सिद्धान्त, भारतीय नैतिक दर्शन, पृ० 336
41. ऋ. 10.58
42. ऋ. 10.50.6.7
43. ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, पृ० 221.26
44. नन्द लाल दशोरा, कर्मफल और पुनर्जन्म, पृ० 139
45. मानौ निदे च वक्तवेऽयों रन्धीररावणे। त्वे अपि क्रतुर्मम। ऋ. 7. 31.5
46. धर्मार्थकाममोक्षादिसुखयुक्तान् स्वानुग्रहेण सद्यः सम्पादय। ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, 247
47. निघण्टू 2.1
48. हर्ष वहन्ती सकृते सुदानवे। ऋ. 1.92.3
49. शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु। ऋ. 7.35.4
50. त्वं तमग्ने अमृतत्व उत्तमे मर्तं दधासि श्रवसे दिवेदिवे। यस्तातृषाण उभयाय जन्मने मयः कृणोषि प्रय आ च सूरये।। ऋ. 1.31.7
51. उभयाय जन्मने उभयस्मिन् जन्मानि, इह च परमं च। वही स्कन्दस्वामी का भाष्य।
52. ऋ. 1.91.20
53. सं गच्छास्व पितृभिः संयमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन्। ऋ. 10.14.8
54. न वां जूर्यन्ति पूर्या कृतानि। ऋ. 1.117.4
55. मामार्यन्ति कृतेन कर्त्वेन च। ऋ. 10.49.3
56. अतो विश्वान्यद्गता चिकित्वाँ अभि पश्यति। कृतानि या च कर्त्वा। ऋ. 1.25.11